साधना-विधि

स्वामी परमानन्द

साधना-विधि

स्वामी परमानन्द

प्रकाशक :
अखण्ड परमधाम
रानी की गली, सप्त सरोवर
हरिद्वार (उ० प्र०)

सम्पादन
अरुणा सक्सेना
एम० ए० (हिन्दी एवं समाज शास्त्र)

संकलन
श्री स्वामी अनुभूतानन्द जी
कु० नीरजा

प्रथम संस्करण : १९८०
द्वितीय संस्करण : १९८६

प्रति : पाँच हजार

मूल्य : १.५० रुपये

विषय-सूची

प्रस्तावना

'श्री स्वामी परमानन्द प्रवचनमाला' का यह एक छोटा-सा पुष्प है। यद्यपि यह 'पुष्प' जुही के पुष्प की तरह बहुत ही छोटा है; लेकिन, इस 'पुष्प' की सुगन्धि जुही के पुष्प की सुगन्धि से भी अधिक मोहक, मादक और आनन्द प्रदान करने वाली है। इस पुस्तक में परम श्रद्धेय श्री स्वामी परमानन्द जी महाराज के केवल दो प्रवचन संकलित किए गए हैं। प्रथम प्रवचन 'साधना-विधि', श्री योगी महाजन मेहर आश्रम, धर्मशाला केण्ट (हिमाचल प्रदेश) में, विदेशी साधकों को कराए गए ध्यान के प्रयोग के समय, ध्यान साधना के सम्बन्ध में दिया गया प्रवचन है। दूसरा प्रवचन 'आत्म-बोध', विश्व में ध्यान योग की शिक्षा देने वाले परम आदरणीय, महान योगी, सन्त शिरोमणि, स्वस्वरूपस्थ, आत्मदृष्टा, श्री श्याम योगीजी, महाराज के कुल्लू (हिमाचल प्रदेश) में स्थित 'श्याम सदन' आश्रम में, अनेक विदेशी साधकों के समक्ष ध्यान के सम्बन्ध में दिया गया प्रवचन है।

इस पुस्तक में दिए गए दोनों प्रवचन, ऐसे साधकों के लिए हैं; जो ध्यान और योग-साधना द्वारा आत्म-साक्षात्कार करना चाहते हैं; ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति, जीवन में शान्ति और सुख प्राप्त करना चाहता है। जीवन की सारी दौड़ इन्हीं के लिए है। शान्ति के लिए पदार्थ-अनुभूति नहीं, चेतना की अनुभूति चाहिए; पर की अनुभूतिमुक्त, स्वानुभूति चाहिए। चेतना की यह अनुभूति, ध्यान के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है।

ध्यान, चेतना के प्रति जाग्रत होना और चेतना को विषय से मुक्त करना है। निर्लेप चेतना का मतलब ही है कि चेतना निर्लिप्त है, असंग है, इस निर्लिप्तता और असंगता का बोध ही वह वास्तविक स्वरूप है, जिसका अनुभव ध्यान की सरलतम विधियों द्वारा भी किया जा सकता है। आकाश कब असंग होगा? जब वर्षा न हो? वायु न हो? धूप न हो? सब कुछ हो, तब भी आकाश असंग ही रहता है, निर्लिप्त ही रहता है। इसी तरह से, आप

निर्लिप्त हैं; आप केवल इससे अनभिज्ञ हैं कि आप निर्लिप्त हैं। ध्यान द्वारा आप इस निर्लिप्तता का अनुभव कर सकते हैं।

हमारी योजना निकट भविष्य में ही, ध्यान के सम्बन्ध में परमपूज्य श्री स्वामी जी द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली अनेक विधियों के सम्बन्ध में पुस्तक प्रकाशित करने की है। साथ ही, हम पूज्य स्वामी जी की सभी पुस्तकों के अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित करना चाहते हैं, जिससे अंग्रेजी जानने वाले एवं विशेष रूप से विदेशी साधक भी लाभ उठा सकें।

इस पुस्तक के प्रकाशित करने में कतिपय व्यक्तियों ने अथक परिश्रम किया है। हम उन सभी व्यक्तियों के बहुत ही आभारी हैं। इनके सहयोग ही से लगभग एक सप्ताह की अल्पावधि में, इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका है। आशा है कि इन प्रवचनों से, साधक और सहृदय पाठक, समान रूप से लाभान्वित होंगे।

एफ १३/५ कृष्ण नगर, दिल्ली
दिनांक १८ सितम्बर १९८०

प्रेम नारायण सक्सेना
एम. ए., एल एल. बी.

द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में दो शब्द

साधकों और पाठकों की विशेष माँग को देखते हुए, 'साधना-विधि' का यह संशोधित और पुनरीक्षित द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तक के प्रकाशन से साधकों की माँग की पूर्ति होगी।

प्रथम संस्करण में रह गई मुद्रण सम्बन्धी अशुद्धियों को भी इसमें दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

वसन्त पंचमी, १३ फरवरी, १९८६
एफ १३/५ कृष्ण नगर, दिल्ली

प्रेम नारायण सक्सेना
एम. ए., एल एल. बी.

साधना-विधि

श्वास के माध्यम से साधना की एक विधि बताई गई थी। वह ध्यान के अतिरिक्त क्षणों पर भी प्रयोग के रूप में चलती रहनी चाहिए। श्वास बहुत तेज न हो, तो उससे कोई हानि नहीं होती। यहाँ तक कि खाते समय और खा लेने के बाद भी यह विधि चलाई जा सकती है; लेकिन उसमें श्वास पर अधिक बल का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

श्वास के लेते समय, केवल श्वास में या श्वास के साथ नाभि में या श्वास के साथ आज्ञा-चक्र पर ध्यान रखा जा सकता है।

श्वास के न लेने के क्षणों में भी आज्ञा-चक्र पर ध्यान रखने का अभ्यास किया जा सकता है और यह प्रयोग आँखें बन्द करके अथवा आँखें खुली रखकर भी किया जा सकता है।

श्वास का प्रयोग करते समय, यदि आज्ञा-चक्र पर ध्यान किया गया हो या नाभि-चक्र पर ध्यान किया गया हो, तो आप कभी-कभी कुछ क्षण के लिए श्वास रोककर के भी, आज्ञा-चक्र या नाभि-चक्र पर अपने मन को, अपनी चेतना को स्थिर कर सकते हैं।

श्वास के प्रयोग में, अपनी चेतना को आज्ञा-चक्र में रखने के अतिरिक्त, उसीके साथ एक सरल उपाय और है। जब श्वास ली जाती है और छोड़ी जाती है, तो उसकी सन्धि में या तो ले लेने के और निकालने के बीच में अथवा श्वास को बाहर कर देने के और खींचने के बीच में, कुछ क्षणों के लिए रुक जाया जाय। जब हम श्वास न निकाल रहे हों और न खींच रहे हों; उस क्षण, बिना श्वास की दशा में हम अपनी चेतना को शान्त और खाली रखकर केवल देखें कि उस क्षण पर शरीर में क्या रिएक्शन्स (प्रतिक्रियाएँ) होते

हैं। आप अनुभव करेंगे कि भीतर रोमांच, कम्पन और खून में विशेष तरह की क्रियाएँ होने लग जाती हैं।

अब आप फिर श्वास का एक हल्का-सा प्रयोग शुरू करेंगे। उसमें ध्यान आज्ञा-चक्र पर ही रखा जाएगा। श्वास लेते समय भी मन को आज्ञा-चक्र पर स्थिर करने का प्रयत्न करेंगे। जिस क्षण आपकी इच्छा हो, श्वास को न खींचें, न फेंकें। सहज स्थिति में कहीं रुक जायें और रुक-रुक करके आज्ञा-चक्र पर ध्यान को और स्थिर करें। अपने ध्यान में रखें कि "मैं इस जगह उपस्थित हूँ" और कुछ नहीं कर रहा। जब आवश्यक हो, फिर श्वास कुछ देर लेते रहें, लेते रहें और कुछ क्षणों के पश्चात् फिर एकदम रुक जाएँ।

इस तरह का प्रयोग, ध्यान में जितनी देर तक आवश्यक हो, उतनी देर तक करें। ठहरने की जगह, सुनिश्चित आज्ञा-चक्र है। श्वास लेने की प्रक्रिया या तो चलती रहेगी या बीच-बीच कुछ देर के लिए बिल्कुल रोककर आज्ञा-चक्र पर ठहरेंगे। उस क्षण पर, न तो आप कोई विचार करेंगे और न कोई प्रयत्न करेंगे; केवल यह देखेंगे कि आप प्रयत्नरहित, इच्छारहित केवल दर्शन कर रहे हैं। उस दर्शन-काल में, जो घटित हो, होने दें। सम्भव है कि चक्र की जागृति हो या किसी अन्य क्रियाशक्ति का जागरण हो जाए। उस काल में जो भी हो, उसको आनन्द से हो जाने देना चाहिए; विरोध नहीं करना चाहिए।

अब आज्ञा-चक्र पर ध्यान स्थिर करने के बाद, श्वास का हल्का सा प्रयोग करेंगे। ध्यान को गर्दन से ऊपर ही थोड़ा-सा ऊपर सर तक, जहाँ चोटी या स्त्रियों के बालों के जूड़े या आपके बाल होते हैं, इस पिछले हिस्से पर वहाँ तक या विशेष आज्ञा-चक्र पर, कहीं पर भी; ध्यान लगा सकते हैं। फिर, गर्दन से ऊपर किसी हिस्से का गहरा अनुभव करें और जो हो, उसको होने दें। विशेष रूप से श्वास लेने के समय और श्वास के रुकने के क्षण पर; शरीर

पर, खोपड़ी पर और नाड़ियों पर, जो कुछ होता हो, उसके प्रति सावधान रहें और ध्यान का प्रयोग करें।

इन प्रयोगों को आप एकान्त में बैठकर या लेटकर भी कर सकते हैं। एक और अन्य सरल प्रयोग है। आप अंगूठे और बीच की उंगली को, अपनी नाक के दोनों ओर आँखों के कोने के पास ले जाकर, नाक को पकड़ें। तर्जनी उंगली को, जो अंगूठे और बीच वाली उंगली के बीच में होती है; उसको आज्ञा-चक्र पर रखें। इसके पश्चात् तीनों उंगलियों से, उनको समेटकर, कुछ चमड़ी को ऊपर खींचें और बहुत देर तक एक स्थिति में पकड़े रहें। फिर आप उसको पकड़कर तब तक बराबर बैठे रहें, जब तक मन वहाँ पूरा एकाग्र होकर ठहर न जाए।

कुछ देर तक आप चमड़ी को खींचें और बाद में न खींचें, न ढीला करें और न सख्त करें। तीनों उंगलियाँ उसी स्थिति में रुक जायें। उन उंगलियों में न अब दबाव रह गया है और न ढिलाई रह गई है। एक जैसा प्रेशर (दबाव) है।

पहली शर्त यही है कि उस चमड़ी पर उंगलियों का दबाव न कम हो और न ज्यादा हो। कुछ मिनट तक, दबाव जितना है, उतना ही बना रहे। अपनी चेतना को, इस चक्र पर बराबर ठहराने से, मन शान्त होता है और चक्र जागने की संभावना रहती है।

दूसरी टेक्नीक है कि आप अपने संकल्प से अपने मन को, जब वह कभी घर में, कभी किसी पेड़ में या किसी अन्य वस्तु में होता है; उस समय आप मन को, अपने सिर से कुछ ऊपर शून्य में, जहाँ कोई वस्तु नहीं हैं; स्थिर करें।

तीसरी विधि है कि कहीं पर लेटकर या किसी तरह से बैठ-कर, अपने कानों के दोनों छिद्रों पर उंगलियाँ लगाकर, कानों को पूरा बन्द कर लें। कानों को बन्द करने के बाद, रात्रि के समय, भीतर कुछ ध्वनियाँ सुनने का प्रयत्न करें; जो पहले सहज सुनाई

पड़ती हों। ये चूँ-चूँ की या कोई अन्य ध्वनियाँ हो सकती हैं। उनको सुनते रहें। कुछ दिनों में आप जो भी चाहें, वह भी सुन सकेंगे या प्रकृति के नियम से भी आवाजें बदलती जायेंगी और उससे आप नाद के द्वारा लय-योग को प्राप्त कर सकते हैं।

चौथा तरीका है कि आप अपनी आँखों की पलकों को बराबर हिलाते रहें। आँखों पर हल्का-सा प्रेशर (दबाव) पड़े और पूरी दृष्टि आँखों के पास देखने के लिए जागी रहे। इस तरह बराबर करते ही रहें। इतना अधिक दबाव न हो कि आँखों में दर्द होने लगे। इतना हल्का भी न हो कि बिल्कुल पता ही न चले। हल्का सा दबाव पड़ता रहे। यह आप तब तक बराबर करते रहें, जब तक आपका मन बिल्कुल एकाग्र होकर शान्त न हो जाए या जब तक कुछ दिखने न लग जाए। कुछ दिखने पर आप उसी स्थिति पर अपनी उंगलियों को रोक दें और उसी स्थिति पर देखते रहें।

इससे दो लाभ हैं। पहला तो यह कि अनुभूति जल्दी होती है और दूसरा यह कि नींद नहीं आती और आलस्य नहीं पकड़ता। जब कभी भी आप सोकर उठते हैं या आलस्य नहीं जाता, तो या तो आँखें धोते हैं या मसलते हैं। उससे आपका आलस्य दूर हो जाता है। आँखों के मसलते रहने से आलस्य नहीं पकड़ता और चक्र जल्दी जाग्रत होकर, कुछ न कुछ अनुभव होने शुरू हो जाते हैं।

पाँचवीं विधि में, आप उस विधि का प्रयोग भी ध्यान में कर सकते हैं, जिसे योगासन करते समय आप शवासन के रूप में करते हैं। शरीर को पूरा शिथिल करने के बाद कुछ देर बायीं करवट, कुछ देर दायीं करवट और कुछ देर सीधा लेटें। इन तीनों क्रियाओं को बराबर दस-दस मिनट या पन्द्रह-पन्द्रह मिनट दे सकते हैं। एक साइड लेटे रहकर शरीर को बिल्कुल शिथिल रखें, ढीला रखें और श्वास लेते रहें। श्वास लेते समय, पलकें बिल्कुल ढीली रहें और

आराम में हों; मस्तक की नाड़ियाँ भी बिल्कुल निष्क्रिय हों। दिमाग से भी कुछ काम न किया जाए। खाली हल्की-सी श्वास लेते रहें, श्वास लेते रहें।

इस तरह से बायीं साइड, दायीं साइड और सीधा लेटकर करने से, कुछ देर के बाद सारे शरीर में विद्युत् का-सा संचार होने लगता है। आनन्द का अनुभव होता है। इस स्थिति में जाने के बाद, ध्यान में सारी रात पड़े रह सकते हैं। आप बड़े गहरे आनन्द का अनुभव करेंगे। जीवन में यह अनुभव होगा कि शवासन का एक सरल-सा प्रयोग कितना लाभदायी है। जब आप शवासन बिना श्वास के करेंगे, तो आपको बहुत लाभ मालूम पड़ेगा। यदि ध्यान अधिक लगता मालूम पड़े और करवट लेने की इच्छा न हो, तो न लें।

छठवाँ प्रयोग ख्याल में ऐसे लायें जैसे कि किसी से लड़ाई हुई थी, वह आपको याद आती है या और कोई घटना घटी थी, तो उस व्यक्ति की और उस जगह की याद आती है। इसी तरह उस अवस्था की याद करें, जब आप गहरी नींद में थे। गहरी नींद के समय, आपके मन में न दुःख था, न भय था, न शोक था, न संसार था, न अपना था और न पराया था। न आप किसी और के लिए दुखी थे और न आपको कोई कामना ही थी। ऐसी स्थिति में आप सोये थे। आप कांशसली (चेतनापूर्वक) होश के साथ उस स्थिति को ख्याल में लाते-लाते ऐसा ध्यान करें कि जैसे आप सोई हुई दशा में थे, वैसे ही आप जाग्रत दशा में हो गये हैं। इस ध्यान के प्रयोग से भी, आप बिना किसी हानि के, सरलतम ढंग से सत्य में पहुँचने के योग्य हो जाते हैं।

अब आप सातवें प्रयोग को लें। आप किसी भी महापुरुष का, जिसमें क्राइस्ट हैं, बुद्ध हैं या कृष्ण हैं; ऐसे स्मरण करें कि उनके खाली शरीर का ही नहीं, बल्कि उनकी मनोदशा का भी स्मरण

करें। जब क्राइस्ट को सूली पर चढ़ाया गया था, तब वह शान्त थे, उनके अन्दर क्षोम नहीं था। बुद्ध पर लोग थूक देते थे, गाली देते थे, तब भी भीतर वे शान्त रहते थे। जब किसी को जहर दिया गया, किसी को गोली मारी गई, तब भी वह भीतर आनन्द में रहा। ऐसा क्यों है ? क्योंकि उनके भीतर, हानि हो जाने के लिए भय का कोई पदार्थ नहीं था। मैं बिगड़ जाऊँगा या मेरा कुछ बिगड़ गया, ऐसा कोई भय नहीं था।

ऐसे व्यक्तियों का स्मरण करके, मन से आपको बुद्ध हो जाना चाहिए, मन से आपको कृष्ण हो जाना चाहिए। आप शरीर से बुद्ध नहीं हो सकते, आप शरीर से क्राइस्ट नहीं हो सकते, तो मन से तो आप बुद्ध और क्राइस्ट हो ही जायें। अब मन से आप क्राइस्ट हो गए। अब यदि आपको लटकाया जाता है, तो आप परेशान नहीं होंगे। लोग आपका अपमान करें, बुरे शब्द कहें, पर आप क्षुब्ध नहीं होंगे। ऐसे शान्त होकर, एक ख्याल लेकर, चलें या बैठें। आप चलते-फिरते और कुछ देर ध्यान में भी यह प्रयोग करें कि आप सचमुच बुद्ध हैं, सचमुच क्राइस्ट हैं, सचमुच कृष्ण हैं; इसलिए आपको ऐसा ही होना चाहिए। तो आप मन से वैसे ही होने लग जाते हैं। यदि आप मन से कृष्ण हो जाएँ, क्राइस्ट हो जाएँ; तो शरीर से कुछ होने की आवश्यकता नहीं है।

हम लोग ज्ञान के विशेष उपासक हैं और उपनिषदों में ज्ञान की बड़ी महिमा है। उपनिषदों की यह स्पष्ट घोषणा है कि ज्ञान के बिना व्यक्ति मुक्त नहीं हो सकता।

"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। तद् योगात् ऋते नहि"।

वह ज्ञान, योग के बिना प्राप्त नहीं होता। इसलिए, योगाभ्यास की, ध्यान की, आवश्यकता है।

ज्ञान का अर्थ है कि आपको एक ऐसा अनुभव हुआ, जिसमें आपने यह जाना कि आपके जीवन में दुःख, चिन्ता, भय और शोक नहीं

थे। ऐसा आपने अपनी ही बुद्धि से देखा। किन्तु, वह देखना, केवल सुनने के बल पर निर्भर नहीं हो पाता; क्योंकि, जीवन में आपको दुःख, जड़ता, पराधीनता, चिन्ता और मृत्यु का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। इन अनुभवों से जब तक आप छूट न जायें, तब तक वह औपनिषदीय सत्य आपकी समझ में नहीं आएगा।

उपनिषदों में वर्णित जो सत्य है कि मुझमें दुःख नहीं है, शोक नहीं है, भय नहीं है; तो ऐसी अवस्था जब तक हमने देखी न हो, तब तक हम उपनिषदों की बात को कैसे मानेंगे ? जैसे कोई व्यक्ति, अनन्तकाल से स्वप्न ही देख रहा हो, स्वप्न ही देखता रहा हो और उससे कहा जाए कि ये स्वप्न झूठे होते हैं; तो वह विश्वास नहीं कर सकता। जब वह एक बार जाग जाता है, तो वह देखता है कि जो उसने रात में देखा था, वह स्वप्न था और उससे अब वह मुक्त हो गया है। यह जो अनुभव है, वह स्वप्न के अनुभव को काट देता है।

जब तक यह जाग्रत अनुभव उसे न हो जाय, तब तक वह स्वप्न के अनुभव को नहीं काट सकता। इसी तरह से, जब तक उसे योग के द्वारा समाधि में अपने स्वरूप का बोध न हो जाए, तब तक वह, वेदान्त के द्वारा प्रतिपादित सत्य, सत्य है और यह जगत उसके वास्तविक जीवन को स्पर्श नहीं करता, ऐसा अनुभव नहीं कर सकता।

हम अभी कल्पना करेंगे कि हमने स्वप्न देखा और उससे जागकर के हम यह देख सके हैं कि वह स्वप्न था, झूठा था और कल्पना थी। किन्तु, जो अभी हम जागकर देख रहे हैं, इसके ऊपर की किसी स्थिति में न हम कभी गये हैं और न जागे हैं। संभव है कि जैसे स्वप्नों से जागा जा सकता है, ऐसे ही जगत से भी जागा जा सकता हो।

कल्पना करो कि यदि जाग जाने पर यह जगत भी उसी तरह

लगने लग जाय, जैसे कि स्वप्न; तो यहाँ के दुःख भी उसी तरह तिरोहित हो जाएँगे। यहाँ का जगत उसी तरह व्यर्थ और स्वप्न की तरह हो जाएगा, जिस तरह कि स्वप्न का जगत हमारे लिए हो गया है। लेकिन, उस उच्चतम सत्य में हम अभी तक नहीं जागे।

स्वप्न की अपेक्षा उच्चतर शक्ति जाग्रत है। जाग्रत की अपेक्षा उच्चतम सत्य, परमात्मा की वह अनुभूति, आत्मा की वह अनुभूति है, जो समाधि में होती है। इसीलिए, जब तक आप एक बार समाधि प्राप्त नहीं करेंगे, तब इस जगत के दुःखों से नहीं छूटेंगे।

हम स्वप्नों से तो सदा के लिए अभी भी नहीं छूटे हैं। बार-बार स्वप्न होते हैं। फिर भी, स्वप्नों के प्रति हम चिन्तित नहीं हैं, भयभीत नहीं हैं। हमारे अन्दर ऐसी घबराहट नहीं है कि रात में कहीं स्वप्न में मृत्यु न हो जाय; बल्कि, ऐसी धारणा है कि यदि मृत्यु हो भी जाएगी, तो कल्पना ही तो है। उससे वास्तविक जीवन नष्ट नहीं होता।

इसी तरह से, यदि उच्चतम सत्य को हम प्राप्त कर लें, तो व्यावहारिक जगत में जब कभी मृत्यु आदि की घटनायें घटित होती हुई मालूम भी पड़ेंगी; लौकिक रूप में कभी मन में चंचलता और विक्षेप आदि के दोष भी आयेंगे; तब उस निगाह से जब हम इनका दर्शन करेंगे, तो वे ऐसे लगेंगे जैसे कि काल्पनिक हैं। यदि सोने की अंगूठी नष्ट भी हो जाए, तो कोई बहुत बड़ा नुक्सान हो गया, ऐसा सोने के जानने वाले को मालूम नहीं पड़ता। उसे लगता है कि अंगूठी नष्ट भी हो गई, तो क्या हुआ, वह तो बनावटी चीज थी; फिर बन सकती है। उसमें कोई हर्ज नहीं है। वास्तविक चीज हमारे पास है।

इसी तरह से यह संसार हमको लगने लगता है कि वास्तविक तत्व तो "मैं" हूँ और यह जो मुझे दिख रहा है, यह जाग्रत अवस्था

का एक सत्य है। जैसे स्वप्नावस्था का एक सत्य होता है, ऐसे ही यह जाग्रतावस्था का भी एक सत्य है। किन्तु, यह "मैं" जैसा सत्य नहीं है; क्योंकि, "मैं" तो सदा ही रहने वाला सत्य हूँ। इसकी पहचान समाधि में होती है।

हम सब संसार के लोग जिनको स्वप्न कहते हैं, उन सपनों से जागने के लिए किसी को न तो शास्त्र की आवश्यकता पड़ती है और न समाधि लगाने की। प्रकृति के नियम से ही हम सो जाते हैं, स्वप्न देखते हैं और स्वभाव से ही उठ जाते हैं। लेकिन, इस जगत में, जिसको ऋषियों ने और शास्त्रों ने स्वप्न कहा है; मोह में पड़े हुए हम देख रहे हैं कि हम यह हैं। यह सच है। इसमें हम अपने आप नहीं जाग पाते। इसके लिए ही शास्त्र, वेद, ऋषि, पैगम्बर, तीर्थंकर सन्त और अवतार समझाने के लिए आते हैं। हमें शास्त्रों की आवश्यकता होती है।

इस जगत को जानने के लिए ही शास्त्र और साधना की आवश्यकता है। जिसको हम सब लोग स्वप्न कहते हैं, उसको ऋषि महत्त्वहीन स्वप्न कहते हैं। उस स्वप्न का उतना मूल्य नहीं है और उस जागने का भी उतना मूल्य नहीं है। उसके लिए हमारे ऋषियों ने जागने शब्द का प्रयोग नहीं किया है। यदि स्वप्न से जागने को जागना समझते, तो जागे हुए व्यक्ति को जागने को क्यों कहते? इसका मतलब यह है कि हमारे ऋषियों की भाषा में उस स्वप्न से उठ जाने को, उस स्वप्न से जाग जाने को, जागना नहीं कहा गया है। जब हम इस जगत से जाग जायें, तभी जागना कहा गया है। जहाँ-जहाँ वेदों ने, शास्त्रों ने और ऋषियों ने, उठने और जागने के शब्दों का प्रयोग किया है; तो इस मोह जगत से पार होने और उठने के लिए कहा है। इस काम में पशु समर्थ नहीं हैं, मनुष्य ही समर्थ हैं। इसीलिए कहा गया है कि मनुष्य को ही मोक्ष का अधिकार है।

कभी-कभी साधुओं से और शास्त्रों के माध्यम से आप लोगों

ने संसार की निन्दा सुनी होगी। वे संसार को बेकार कहते हैं। उनका कहना इस अर्थ में नहीं है कि संसार इतना व्यर्थ है कि उसकी कोई उपयोगिता नहीं है। संसार के कामों की भी साधु लोग कभी-कभी निन्दा करते हैं। उससे उनका अभिप्राय यह नहीं होता कि संसार के काम छोड़ देने हैं। उनका प्रयोजन इतना ही है कि संसार के सब काम कर लेने पर भी, जागने वाला काम आपको करना ही होगा। जब तक यह जागने वाला काम पूरा नहीं करोगे, तब तक जिन्दगी का लक्ष्य, उसका उद्देश्य, पूरा नहीं हो सकता।

आत्मा का अनुभव जिसको होता है, उस व्यक्ति के अतिरिक्त, हमारी इन्द्रियों के द्वारा यह ज्ञात नहीं हो सकता कि उस व्यक्ति को आत्मा का अनुभव हुआ है अथवा नहीं हुआ है। वह व्यक्ति क्या समझता है? जितने भी आध्यात्मिक लाभ हैं, वे हमारी चेतना के तल पर ही होते हैं, वे भौतिक नहीं होते। इसलिए, जहर खाकर मरता देखा जा सकता है; लेकिन, आत्मज्ञान के द्वारा अमर हुआ व्यक्ति देखने को नहीं मिलता।

हम संसार में बुढ़ापा देखते हैं, मृत्यु देखते हैं, किसी का मिलना और बिछुड़ना देखते हैं; लेकिन, परमात्मा का मिलना और परमात्मा का बिछुड़ना लोग नहीं देख पाते। जो लोग परमात्मा से अपने को भिन्न जानते हैं; वे भी जानते नहीं हैं, सिर्फ मानते हैं। उनको यह पता नहीं है कि वे अलग भी हैं; क्योंकि अलग होने का तो मतलब यह है कि वे परमात्मा को जानते हैं। हम यदि यह कहें कि यह घड़ी, रेडियो नहीं है, टेप रिकार्डर नहीं है; तो इसका मतलब यह है कि रेडियो और टेप रिकार्डर को हम पहचानते हैं और घड़ी को भी हम पहचानते हैं जब तक हम दो को ठीक से नहीं जानते हों, तब तक हम अलग हैं, यह भी कैसे जान सकते हैं।

लोगों को परमात्मा से अलग होने का भी ज्ञान नहीं है और

परमात्मा के मिलने का भी पता नहीं है। इसीलिए यह जो अनुभव है, वह भौतिक नहीं है। जैसे हम किसी के मिलनें और बिछुड़ने को अपनी आँखों से देख लेते हैं; ऐसे ही हम परमात्मा को पाने और बिछुड़ने को देखें कि अमुक ऋषि ने भगवान को पा लिया।

भगवान के बारे में मेरे कहने से आप यह कल्पना करेंगे कि मैं पहुँचा हुआ हूँ। मैंने भगवान को पा लिया है। यह आपकी अभी कल्पना ही होगी। आप यह नहीं देख सकेंगे कि भगवान मुझे मिला है कि नहीं मिला है। यह आप तब तक नहीं देख सकेंगे, जब तक आपको ही इस बात का अनुभव न हो कि भगवान से मिलना क्या है और बिछुड़ना क्या है ? हमारी भाषा में भगवान को न जानना ही भगवान से बिछुड़ना है और भगवान को जानना ही भगवान से मिलना है; क्योंकि भगवान कोई ऐसी चीज नहीं है, जिससे हम जुदा हो सकें या अलग हो सकें। इसलिए, भगवान से अलग होने की तो सम्भावना ही नहीं है।

भगवान के बारे में सिर्फ अपने अज्ञान के कारण ही हम अपने को उससे बिछुड़ा हुआ जानते हैं। उसकी अनुभूति ही, उसका पा जाना होगा; क्योंकि यदि वह कहीं अलग होता, तो ही उसे पाया जा सकता था। जो चीज अलग नहीं होती, उसके पाने की भी बात नहीं है; सिर्फ अनुभव करने की बात है। इसीलिए, जिनको अनुभव हुआ है, उन्हें अमृत प्राप्त हो गया; जबकि बाहर से देखने पर उनकी मृत्यु हुई थी।

ज्ञानियों को देखकर भी आपको संशय हो सकता है कि अमुक साधु बड़ा ज्ञानी था, फिर भी उसकी मृत्यु हो गई। ईसा सूली पर चढ़ा दिए गए। कृष्ण मार दिए गए। स्वामी राम, गुप्तार घाट पर मुक्त हो गये। बुद्ध आज पृथ्वी पर नहीं हैं। जो लोग अपने को अविनाशी कहते थे, आत्मा कहते थे, जो कहते थे कि उनका एक्जिस्टेन्स (अस्तित्व) सदा रहता है, वे भी भौतिक जगत में

हमको दिखाई नहीं पड़ते। इसका मतलब यह हुआ कि यदि हम इन आँखों से देखें, तो वे भी नाशवान् हैं। इसलिए, अमृत की प्राप्ति, केवल चेतना के तल पर होने वाला एक अनुभव है; वह आँखों से दिखाई देने वाला कोई सत्य नहीं है।

ईसा, बुद्ध, महावीर और कृष्ण हमारी आँखों के सामने आज नहीं हैं। क्या शरीर का होना ही बुद्ध का होना है ? क्या शरीर का होना ही भगवान का होना है ? क्या शरीर का होना ही कृष्ण का होना है ? वह आज है या मैं आज हूँ, तो किसी की भी दृष्टि में एक दिन ऐसा होगा कि वह नहीं होगा, मैं नहीं होऊँगा। यदि इसी को हम "मैं" समझते हैं, यही "मैं" है; तो यह नहीं रहेगा। उस अर्थ में "मैं" अविनाशी कभी नहीं हो सकता। जब मैं यह देखता हूँ कि यह "मैं" नहीं है, यह तो शरीर है; तब यह तो "मैं" से पता चलता है कि "मैं" पदार्थ नहीं है। शरीर भी एक तरह का पदार्थ है, तत्त्व है। ऐसा पदार्थ "मैं" तो नहीं है। जब हमको यह पता चलता है, तब हमको यह मालूम होता है कि हमारी मृत्यु नहीं होती।

हम कहते हैं कि हमारी मृत्यु नहीं होती। कहने के लिए हम कहते हैं। अपने विषय में कहने के लिए हमारे पास ज़बान है। "मैं" नहीं मरता। "मैं" शरीर नहीं हूँ। "मैं" चैतन्य हूँ, चेतना हूँ, आत्मा हूँ, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ। लेकिन, अनुभव को व्यक्त करने के लिए मेरे पास यही जबान है। यही साधन है, जिससे मैं आप तक अपनी बात पहुँचाता हूँ। क्या यह व्यक्ति कहता है कि मेरी मृत्यु नहीं होगी ? आप एक शस्त्र लेकर मुझे मारने आ जाते हैं। बहुत से साधुओं के साथ ऐसा पहले किया गया है। उन्हें मारा गया है। यही आजमाने के लिए कि यदि वे अविनाशी हैं, तो नहीं मरेंगे; यदि वे परमात्मा हैं, तो वे समाप्त नहीं होंगे। यही समझकर लोगों ने उनको मार डाला। उनके

मरने के बाद प्रायः कई लोगों ने यह धारणा बना ली कि वे समाप्त हो गये। यदि वे भगवान होते, तो समाप्त न होते। अविनाशी होते, तो नहीं मरते। यह धारणा इस कारण से है कि लोग एक्जिस्टेन्स (अस्तित्व) को भौतिक रूप में ही देख पाते हैं। वे, भौतिक रूप में उनको समाप्त किया जाना ही देख पाते हैं।

जिस अर्थ में उनकी मृत्यु नहीं होती, उस अर्थ को समाज नहीं पकड़ पाया। बहुत लोगों को जब सूली पर चढ़ाया गया, तब उन्होंने ऐसे वचन कहे हैं, जो हमारे जीवन में घटित होते नहीं दिखते। जिस ज्ञान के बल पर बुद्ध, महावीर और कृष्ण शान्त हुए हैं और देहादि के एवं मृत्यु के भय से मुक्त हुए हैं; उस ज्ञान के जानने के लिए सरल उपाय है। मान लो कि कोई व्यक्ति चुपचाप लेटा हुआ है, सोने का पोज बनाकर, ढोंग किए हुए लेटा हुआ है। लोग आवाज देते हैं और वह बोल नहीं रहा है। वह पूरा उसी पोज में है, जैसे कि सोया हुआ है। किन्तु, लोगों को धोखा हो सकता है; क्योंकि, लोग आँख से देखते हैं, लोग बाहर से देखते हैं। उनकी आँखें शरीर पर पड़ती हैं।

इन्द्रियों के द्वारा तो स्थूल पदार्थ-शरीर-ही दिखता है। किन्तु, भीतर जो जागा है, वह हमारी इन इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। वह व्यक्ति, जो पड़ा हुआ है; वह भीतर से जाग रहा है। वह जागा हुआ है और कानों के द्वारा सुन रहा है। शरीर के द्वारा उसे हवा का स्पर्श हो रहा है। वह भीतर से जाग रहा है।

थोड़ी देर के बाद और एक स्थिति घटित हो सकती है। हो सकता है कि सचमुच ही उसे नींद आ जाए और वह एक स्वप्न देखने लग जाए। अब आप देखेंगे कि उसकी जो चेतना है, वह इस जाग्रत देह से सम्बन्ध छोड़ गई। वह स्वप्न देखने लग गया, तब भी वह व्यक्ति देख रहा है। इस तरह से वह लेटे-लेटे देखे कि

वह इन इन्द्रियों के द्वारा देखता है।

इन्द्रियाँ ही तो "मैं" नहीं हूँ? यदि यही इन्द्रियाँ "मैं" होतीं, तो "मैं" की तरह मेरा साथ देतीं। जब तक "मैं" रहता, ये इन्द्रियाँ समाप्त न होतीं, छूटती नहीं; लेकिन, जब "मैं" स्वप्नों में चला गया, "मैं" स्वप्न देखने लगा, तब ये आँखें, ये कान, यह शरीर "मैं" के साथ न था। "मैं" अलग हो गया था। "मैं" अन्य इन्द्रियों के साथ हो गया, अन्य कल्पनाओं के साथ हो गया इनका साथ छूट गया।

जब फिर मेरी स्थिति बदली, तो वे कल्पनाएँ मेरे से छूट गईं और "मैं" इनके साथ हो गया। इसका मतलब यह है कि जो चीज एक सेकण्ड को भी किसी से अलग हो सकती है, वह अलग ही है। यदि मैं स्वप्न में इन आँखों को छोड़ देता हूँ, इन कानों को छोड़ देता हूँ; तो इसका मतलब है कि जागकर मैं देह हूँ। यह जो यही हूँ, चलता हूँ, ऐसा जो अभ्यास हो गया है, यह अभ्यास भी टूट जाता है।

स्वामी राम बैठते समय, लेटते समय, आते और जाते समय, कभी भी ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया करते थे कि मैं बम्बई से आया हूँ, मैं फॉरेन (विदेश) गया था। वे कहते थे कि अभी राम फलाँ जगह गया था, राम अभी फलाँ जगह लेक्चर देकर आया है, राम गिर पड़ा, राम स्नान करने गया था। वे राम शब्द का प्रयोग करते थे। थर्ड पर्सन (अन्य पुरुष) की तरह नाम लेते थे। फर्स्ट पर्सन (प्रथम पुरुष) की तरह नहीं बोलते थे। मतलब "मैं गया था" ऐसा न कहकर "राम गया था" कहते थे।

देह बैठी है, देह लेटी है; लेकिन, "मैं" नहीं लेटा है। "मैं" तो देख रहा हूँ, लेटे हुए को देख रहा हूँ; क्योंकि "मैं" फर्स्ट पर्सन है। थर्ड पर्सन यानी अन्य पुरुष जड़ हो सकता है। फर्स्ट पर्सन में, उत्तम पुरुष में "मैं" हमेशा देखने वाला होगा; "मैं" चेतन होगा। चेतन न होगा, तो "मैं" नहीं हो सकता है। यह दीवार है, यह

खम्बा है, यह टेप रिकार्डर है और यह घड़ी है। जो मुझे मालूम पड़ेगा, वह अन्य होगा; थर्ड पर्सन होगा। वह फर्स्ट पर्सन नहीं होगा। फर्स्ट पर्सन में "मैं" ही हो सकता है। इसलिए, यह ख्याल है, यह आँख है, यह कान है, यह पैर है, ये हड्डियाँ हैं, यहाँ दर्द है, यह सब थर्ड पर्सन में है। ये सब अन्य में हैं। "मैं", अकेला "मैं", अर्थात् चेतन ही फर्स्ट पर्सन में है। जब हम "मैं" को "मैं" की तरह देखने लगते हैं और सबको थर्ड यानी अन्य की तरह देखने लगते हैं; तब हमारा सब दृश्यों से तादात्म्य टूट जाता है। इसको हमारे शास्त्रों ने चिद्-जड़-ग्रन्थि का टूटना कहा है। जड़ और चेतन की गाँठ का खुलना कहा है। इसे "यह" और "मैं" को भिन्न-भिन्न देख लेना कहते हैं।

भगवान कृष्ण ने गीता के तेरहवें अध्याय में 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' शब्दों का प्रयोग किया है। 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' सबके पास हैं; लेकिन यह (शरीर) क्षेत्र है और "मैं" क्षेत्रज्ञ हूँ, ऐसा ज्ञान सबके पास नहीं है। यह ज्ञान होना ही ज्ञान है, ऐसा भगवान ने कहा है।

आज के ध्यान में इसी तरह का एक प्रयोग करेंगे। उसके साथ कोई मन्त्र बोलना चाहे, स्मरण करना चाहे और कोई प्रक्रिया अपनाना चाहे, तो अपना सकता है। किन्तु, ध्यान में मुख्य बात यह रहनी चाहिए कि यह जो क्रिया हो रही है, यह क्रिया है। क्रिया चेतन नहीं होती, वह जड़ है। क्रिया को खुद मालूम नहीं कि क्या क्रिया हो रही है। मुझे मालूम होता है कि यह क्रिया हो रही है। इसी तरह से श्वास भी एक क्रिया है। क्रिया हम नहीं करते, वह तो हो ही रही है। चाहे करने वाली क्रिया के साथ जागें, चाहे होने वाली क्रिया के साथ जागें, चाहे कोई क्रिया कर चलें और करते चलें और करते में देखते रहें कि यह करना चल रहा है; मुझे यह पता चलता है कि "मैं", "मैं" हूँ; यह क्रिया, क्रिया है। कर्म, कर्म है; "मैं" "मैं" हूँ। हम होने वाली स्वाभाविक

श्वास की क्रिया में सावधान हो जाएँ और यह देखें कि श्वास चल रही है, इसमें "मैं" क्या कर रहा हूँ ? इसी प्रकार से भगवान कृष्ण ने गीता में एक श्लोक ज्ञानियों के लिए कहा है—

पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥

स्वामी राम की तरह आपकी आँख बन्द है, शरीर लेटा हुआ है । आप देख रहे हैं कि आँख बन्द है और शरीर लेटा है । श्वास धीमी या तेज चलती है; आप देख रहे हैं कि श्वास चल रही है । कान में आवाज आई । किसी ने शोर किया । चिड़िया बोली, कान में आवाज आई । कान में आवाज आती है और पता चलता है कि आई । इसमें आपने कोई प्रयत्न नहीं किया कि आवाज आए । आपने कोई विरोध भी नहीं किया कि न आए । आप खाली जागे हैं; क्योंकि आपका काम किसी क्रिया को रोकना और करना नहीं है । भगवान् ज्ञानियों के लिए कहते हैं—

"नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।"

युक्त पुरुष, तत्त्ववेत्ता सिर्फ यह देखता है कि यह क्रिया मैं नहीं कर रहा । जब कान में आवाज आती है, तो सुनने के लिए मैंने कौन-सी कोशिश की ? चुपचाप पड़ा था । किसी ने राइफल की आवाज की, सुनाई पड़ गई । किसी ने ताली बजाई, आवाज आ गई । चिड़िया बोली, आवाज आ गई । किवाड़ की आवाज हो गई, सुनाई पड़ गई । हमने चाहा भी नहीं था कि हमें किवाड़ की आवाज सुननी है; सहज सुनाई पड़ गई । इन्द्रियों के द्वारा आवाज सहज ही ग्रहण हो जाती है । इसमें मैंने कौन-सा काम किया ?

"मैं" जागा हुआ था । लेटे-लेटे हो या बैठे-बैठे हो या खड़े-खड़े हो, शरीर किसी भी हालत में क्यों न हो; लेकिन, मुझे किसी भी क्रिया के साथ कर्त्ता नहीं होना है । किसी इन्द्रिय के साथ ज्ञाता

नहीं होना है। किसी इन्द्रिय व्यापार के साथ मेरा तादात्म्य नहीं है। मन के सुख-दु:ख और विक्षेप के साथ भी मिलना नहीं है। यह मन में होने वाला विक्षेप भी मन में हो रहा है, इससे भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। इस तरह से सम्बन्ध शून्य, असंग प्रज्ञा का जागरण, असंग बुद्धि का जागरण हो।

बुद्धि में ही ऐसा भ्रम होता है कि 'मैं' कर्त्ता हूँ। बुद्धि में ही यह भ्रम है कि 'मैं' हूँ और बुद्धि से ही यह भ्रम निकालना है। आत्मा अपने आप में सदा से ही ठीक है। लेकिन, इस बुद्धि के भ्रम के कारण ही बुद्धि इस निर्णय को नहीं करती। इसीलिए, भगवान् बार-बार कहते हैं "मैं अपने भक्त को योग देता हूँ, मैं दिव्य-दृष्टि देता हूँ, मैं समझ देता हूँ।" भगवान् आत्मा नहीं देते, भगवान् मुक्ति नहीं देते।

आपको समझने की भी कोशिश नहीं करनी है। अपने आप जितना समझ में आ जाए, आ जाए। जो कुछ हो जाए, हो जाए। "मैं" के ऊपर कोई भी बोझ नहीं डालना कि मेरी समझ में नहीं आया या समझते समय ध्यान छूट जाता है यह बुरी चीज है। ऐसा कुछ भी नहीं है। जो हो रहा है, हो रहा है, समझ में आ गया, आ गया; नहीं आया, नहीं आया। समझ से भी तुम्हारा वास्ता नहीं है। यदि है, तो इतना ही है कि 'मैं' कर्त्ता नहीं हूँ। केवल कुछ क्षण की प्रतीक्षा कीजिए। तुम सचमुच ही इस सेकण्ड कुछ भी नहीं कर रहे थे और तुम्हें बड़ी शान्ति और निर्भार जीवन का अनुभव हुआ।

सावधान होकर देखें कि सचमुच आज तक की यह धारणा कि आप करते हैं, इसलिए सब कुछ हो रहा है; क्या भ्रम ही नहीं थी? आज आप अनुभव कर रहे हैं कि बिना कुछ किए समझ में आ जाता है, सुनाई दे जाता है। क्रियाएँ हो रही हैं, श्वास चल रही है। प्रक्रिया चल रही है और आप कुछ भी नहीं कर रहे, तो भी हो रहा है। आपको आज तक भ्रम रहा कि आप करते हैं, आप

सुनते हैं। आपके करने से यह होता है, इस भ्रम से आज आप छूट रहे हैं।

आनन्द के साथ सावधान रहिए, जागिए, प्रतीक्षा करिए। उस क्षण की प्रतीक्षा करिए, जब सृष्टि का इतना बड़ा राज, जो छिपा था; वह खुल जाएगा।

आज तक आप इतने बड़े भ्रम में थे और सारा संसार इस भ्रम में पड़ा है कि उसके करने से सब होता है। शास्त्र, गुरु और आचार्य सदा-सदा से कह रहे हैं कि सब ईश्वर कर रहा है, सब अपने आप हो रहा है। प्रकृति कर रही है, फिर भी आप अपने आपको कर्त्ता माने चले जा रहे हैं।

इस भ्रम से छूटने के लिए ही आप बैठे हैं। इस भ्रम के निवारण के लिए ही बैठे हैं। कितनी बड़ी खोज, कितना बड़ा अनुसंधान करने को आप बैठे हैं। इसलिए, अपने को भाग्यशाली समझते हुए, प्रसन्नतापूर्वक इस सत्य को खोजो कि सचमुच आप कर रहे हैं या घटना अपने आप हो जाती है। मन में इच्छा, विक्षेप और चंचलता आ जाती है कि आप लाते हैं ? आप इस बात को देखें। आप लाये नहीं हैं, ये तो आ गई है। उसकी जिम्मेदारी तुम्हारी कहाँ है ? तुम हो जाने वाली घटनाओं को, अपने आप हो जाने वाली घटनाओं को, स्वयं द्वारा उत्पन्न की गई मानकर, दुःख, ग्लानि, भय और संकोच से भर जाते हो। जिस समय तुम यह देख लोगे कि ये हो गई हैं, अपने आप हो गई हैं; तो अपने आप ही आपके भीतर एक मुक्ति का, आनन्द का, जन्म होने लग जाएगा।

दो मिनट पूरी स्वतन्त्रता के साथ जैसा जो कुछ हो रहा है, उसको हो जाने दीजिए। कोई विरोध न करिए। अपनी कहीं भी कोई कामना न करिए। जो घटता है, उसे सहज ही घट जाने दीजिए। भगवान् पर छोड़ दीजिए। जो घट जाए, घट जाए। जो हो जाए, हो जाए। हम आनन्द से शान्त होकर जागते रहें।

असंग और निर्लेप चेतना का अर्थ यह नहीं होता कि अमुक चीज नहीं होगी, तब हम निर्लेप होंगे। निर्लेप का तो मतलब ही है कि सब कुछ है, पर वह निर्लिप्त है; जैसे कि आकाश। वायु न हो, बादल न हो, धूप न हो, वर्षा न हो, तब आकाश असंग होगा? निर्लेप होगा? ऐसा नहीं है। सब कुछ हो, तब भी आकाश निर्लिप्त रहता है। इसी तरह से आप निर्लिप्त हैं; केवल आपको निर्लिप्तता का पता नहीं चलता। सिर्फ आपकी बुद्धि में यह बात आ जाए कि आप निर्लिप्त हैं, असंग हैं, अकर्त्ता हैं। बाकी तुम पहले से ही कर्त्ता नहीं हो, पापी नहीं हो। पहले से ही बद्ध नहीं हो। तुम्हारी बुद्धि ने "मैं" में दुःख, भय, शोक और कर्त्ता का आरोप कर दिया है। बुद्धि की कृपा से ही जब तुम्हें ज्ञान होगा, तो तुम इस भ्रम से छूट जाओगे। बुद्धि की शरण लो, अर्थात् ऐसी बुद्धि की कृपा प्राप्त करो कि जिसके द्वारा तुम देख सको कि तुम निर्भार हो गये, असंग हो गये, मुक्त हो गये, शान्त हो गये।



आत्म-बोध

साधक दो तरह के होते हैं। एक वे, जो आनन्द के लिए साधना में प्रवृत्त होते हैं। दूसरे वे, जो सत्य की जिज्ञासा लेकर साधना में प्रवृत्त होते हैं। सत्य की जिज्ञासा लेकर ध्यान में बैठने वाले साधक, सत्य का अनुसन्धान करते हैं; वे आनन्द की परवाह नहीं करते। आनन्द की इच्छा लेकर ध्यान में बैठने वाले साधक, आनन्द की उपलब्धि में डूबने लग जाते हैं; वे सत्य की परवाह नहीं करते।

यद्यपि, आनन्द प्राप्त करने वाले व्यक्ति भी अपनी बुद्धि के संशय मिटाना चाहते हैं; लेकिन, वह काम उनका बाद में होता है। सत्य की जिज्ञासा रखने वाले व्यक्ति भी, जीवन में आनन्द चाहते हैं; लेकिन, वे संशयरहित पहले होते हैं और उन्हें आनन्द का अनुभव बाद में होता है। मन प्रधान व्यक्ति, आनन्द और प्रेम के रास्ते से ध्यान में जाते हैं और बाद में संशयमुक्त होते हैं। बुद्धि प्रधान व्यक्ति, संशयरहित होने का और सत्य के बोध का पहले प्रयत्न करते हैं और आनन्द पीछे प्राप्त करते हैं।

जिनके जीवन में प्रेम और आनन्द की प्यास अधिक हो, वे सत्य की परवाह छोड़कर, पहले किसी प्रेम में, मन्त्र में, साधना में, आनन्द से डूबना प्रारम्भ करें और जब मन आनन्द में पूरा डूब जाएगा, तब एक दिन चित्त शुद्ध होने पर वे सत्य को प्राप्त कर लेंगे।

प्रेम और आनन्द के रास्ते से चलने वालों को विघ्न कम आते हैं और आनन्द तथा प्रेम में डूब करके सत्य के पाने में सुविधा होती है। किन्तु, इसमें विश्वास की अधिक आवश्यकता है। इस रास्ते

में तर्क की आवश्यकता नहीं होती; विश्वास, समर्पण और प्रेम की ही आवश्यकता रहती है। ज्ञान के रास्ते से या बुद्धि के रास्ते से जाने वाले साधक, हर बात में भीतर प्रश्न उठाते हैं और उनके उत्तर खोजते हैं और अपनी विवेक शक्ति से ही देखने की कोशिश करते हैं। जो कुछ भी उन्हें गलत या झूठ मालूम पड़ता है, उसे छोड़ते जाते हैं और धीरे-धीरे सत्य की ओर बढ़ते जाते हैं।

आज ऐसी ही एक ध्यान की घटना हुई, जो ज्ञान के मार्ग की पोषक है। उस पर मैं अभी चर्चा करूँगा।

मैं प्रातःकाल ध्यान में बैठा था। मेरा मन किसी कल्पना में इतना ज्यादा उलझा कि वह कल्पना साकार मालूम पड़ने लगी। ऐसा लगा जैसे मैं किसी व्यक्ति से बात कर रहा हूँ और उसको कुछ समझा रहा हूँ। बात-चीत कर रहा हूँ और डाँट रहा हूँ। जब वह व्यक्ति मेरे सामने था, उस समय मैं उसे डाँट रहा था। उस समय ही मेरे मन में एक प्रश्न उठा। क्योंकि, मैं ध्यान के लिए बैठा था, इसलिए प्रश्न उठना स्वाभाविक था।

मैंने देखना शुरू किया कि क्या यह व्यक्ति है? मुझे लगा कि यह तो ख्याल है, यहाँ कोई व्यक्ति नहीं है। मैं जो समझा रहा हूँ, वह भी ख्याल है और वह ख्याल भी टूट गया। और तब, जिस तखत पर बैठा था, मुझे देह बैठी नजर आने लगी।

ये दो अवस्थाएँ हो गईं। एक मेरी काल्पनिक या मानसिक स्वप्न की तरह की दशा हो गई और एक जाग्रत की, जिसको कि आप सब जानते हैं। तब मैं दोनों के बीच में खड़ा होकर, दोनों की तरफ झाँकने की कोशिश करता था। एक बार मैं उधर देखता था, जहाँ जाग्रत देह बैठी थी और एक बार जो कुछ मैंने कल्पना की थी या मुझे हो गई थी, उसकी ओर देखता था। धीरे-धीरे दोनों के बीच में ऐसा जागा कि शरीर भी खो गया और कल्पना भी खो

गई। मैं एक तीसरे बिन्दु पर खड़ा हो गया; जो न स्वप्न था, न जाग्रत। न वह स्वप्न का दृश्य था और न वह जाग्रत का दृश्य था।

मैं दोनों की तरफ मुड़कर देखता था। कभी इधर की तरफ चित्तवृत्ति मुड़ती तो मैं स्वप्न देखता, कल्पना की ओर देखता। कभी बुद्धि उधर की ओर होती, तो जगत की तरफ देखता। ये दो मेरे देखने के कोण थे और मैं वहाँ बीच में शामिल था। जब मैं उस तीसरे बिन्दु को "मैं" के रूप में देखने लगा; तब स्वप्न में जो "मैं" देखता था, वह "मैं" भी "मैं" और मेरा न लगा और जाग्रत में जो यह शरीर था, वह भी मेरा जैसा न लगने लगा और मैं साक्षी की तरह स्पष्ट अपरोक्ष अनुभव करने लगा।

ऐसी स्थिति में, मुझे पहली बार लगा कि यह स्वप्न बुद्धि है, जो कल्पना की ओर मुड़ती है; और यह जाग्रत बुद्धि है, जो जगत के देखने का काम करती है। जब मैं दोनों को ठीक से देखने लगा और तीसरे "मैं" का अनुभव हुआ, तब यह पता चला कि इसका नाम आत्म-बुद्धि है। जिस समय इस आत्म-बुद्धि का, तीसरी तरह की बुद्धि का उदय हुआ; उसी समय मैंने भय, संसार, दुःख और चिन्ता से मुक्त, अपने को शुद्ध, मुक्त और आनन्दमय पाया।

जब जाग्रत की तरफ बुद्धि ज्यादा हो जाती है, तो स्वप्न बिल्कुल छिप जाता है। जब स्वप्न में व्यक्ति ज्यादा प्रविष्ट हो जाता है, तो जाग्रत बिल्कुल छिप जाता है। लेकिन, जब हम "मैं" की जगह सन्धि में खड़े होते हैं, तब थोड़ा यह, थोड़ा वह देखते हुए, मैं तीसरे बिन्दु में सत्य हो जाता हूँ। वे दोनों झूठे हो जाते हैं।

जैसे कि मैंने अपने अनुभव रखे, ऐसे ही आप भी ध्यान के समय जब किसी कल्पना में गहरे गये हों, गहरे पहुँच गये हों, तब जरा-सा सावधान हों। ये कल्पना है और तब तुम्हें जगत, जैसा हम कहते हैं, वैसा भान होने लगेगा। फिर आप उस कल्पना को

लें, जो अभी छोड़ दी है। फिर जगत को देखें। फिर दोनों की ओर न देखते हुए, तटस्थ हों; होते चले जाएँ और थोड़ी देर में आप "मैं" पर स्थित होना शुरू करें और यह देखें कि दोनों ही आपको मालूम पड़ते हैं और आप साक्षी हैं।

स्वाभाविक रूप में, जब आपका मन किसी कल्पना में अधिक लीन होने लगता है, तो वह आपके ऊपर बोझ बनने लगती है। आपका दिल उससे हटना भी चाहता है। थोड़ा-सा संकल्प जुटायें और उस कल्पना को छोड़ें और सावधान होकर, जहाँ बैठे थे, जहाँ ध्यान कर रहे थे, उस जगह पर आ जायें। और फिर जब इस देह पर ज्यादा आ जायें, तो फिर उसी कल्पना को लायें, जो कल्पना आपके मन में गहरी थी, जो छोड़ दी है। बार-बार इस तरह प्रयत्न करें। कभी कल्पना में चले जायें, कभी स्थूल देह में आ जायें। इस तरह करते-करते, दोनों की यात्रा तुम्हें आसान मालूम पड़ने लगेगी और धीरे-से आपको बीच का बिन्दु आसानी से पकड़ में आ जायेगा। जैसे झूला, हिलते-हिलते बीच में सन्धि पर रुक जाता है; ऐसे ही आपकी कल्पना; जाग्रत और कल्पना दोनों के बीच में देखते-देखते, दृष्टि बीच में रुक जायेगी और तब तुम आत्मा को समझ जाओगे।

आप एक व्यक्ति की तरह हैं और आपकी बुद्धि झूले की तरह है। कभी वह दायें जाती है और कभी बायें। कभी वह जाग्रत में चली जाती है, कभी स्वप्न में। तुममें वह कभी खड़ी नहीं होती अथवा तुम और तुम्हारी बुद्धि ठीक जगह पर नहीं होती। आप बुद्धि के द्वारा कभी जाग्रत की तरफ झूल जाते हैं और कभी स्वप्न की तरफ झूल जाते हैं। लेकिन, जब आप सावधान रहेंगे, तो यह बुद्धि झूलते-झूलते, न स्वप्न की तरफ भागेगी और न जाग्रत की तरफ भागेगी। जब बुद्धि कहीं नहीं भागेगी, तो उस शान्त अवस्था

में तुम्हारी बुद्धि तुम पर ही ठहर जायेगी। उस ठहरी हुई बुद्धि में, जो अनुभव बचता है, वही तुम हो।

जैसे-जैसे झूले की लम्बाई कम होती जायेगी, तो एक स्थिति ऐसी आएगी जब वह ठहर जाएगा। ऐसे ही, व्यक्ति जब सावधान होता है, तो कल्पना में जाता है और फिर जाग्रत की तरफ आता है। यदि आप जाग्रत के बिन्दु को भी पकड़कर बैठ जायेंगे, तो भी आप एक सिरे को पकड़ लेंगे और जगत तुम्हें सच्चा लगने लग जाएगा। यदि तुम कल्पना में प्रवेश कर जाओगे, तो तुम्हें स्वप्न सच्चा लगने लग जाएगा। इसीलिए, किसी किनारे पर नहीं रहना है; बल्कि धीरे-धीरे किनारों की दूरी को कम करते जाना है।

एक ऐसी बुद्धि आ जाए, जिसे स्वप्न और जगत दोनों दूर न मालूम पड़ते हों। वे एक बिन्दु पर ही मिल जाएँ। दोनों किनारे जहाँ मिल जाते हैं, उसी का नाम सत्य है। वही ठहरा हुआ झूला है, जहाँ जाग्रत और स्वप्न दोनों मिल जाते हैं और उस बिन्दु पर, उस जगह पर, तुम अपने को देख पाते हो कि सत्य 'मैं' हूँ और सब कल्पना है। इस तरह से आप बुद्धि को जाग्रत करके, सावधान रहकर, ध्यान की एक विधि को अपना सकते हैं।

इसी विधि में कभी-कभी ऐसा होता है कि जब आप कल्पना में अधिक डूब जाते हैं, तो मन नहीं लौट पाता; तब आप किसी महान् क्रिया का-मन्त्र का-आश्रय लेकर, पुनः सावधान होकर स्थूल शरीर के साथ आ जाते हैं। जब हम फिर बहकते हैं, तब फिर आ जाते हैं और जाग्रत में ठहरने की कोशिश करते हैं।

इसके लिए यह भी विधि है कि हम स्वप्नों से पहले छूट जायें, कल्पना से पहले छूट जायें और हमें जाग्रत में ठहरना आ जाए। उसी में आता है कि हम सत्य पर अपना ध्यान टिका दें, भीतर के अवकाश में, श्यामाकाश में ध्यान टिका दें, मन्त्र में टिका दें, श्वास

में टिका दें। जो इस समय है, उस पर हम टिकें। हमने बाहर जो कुछ कभी देखा था या कभी सुना था, जो विचार भीतर कल्पना में, स्मृति में हैं; उधर न जाएँ। न भविष्य में जायें, न भूत में जायें। अभी जो कुछ है, उसी के प्रति सावधान रहें; तो हम कल्पनाओं से मुक्त हो जाते हैं। एक चीज से मुक्त होना हमें आ जाता है।

इतना कर लेने के बाद फिर आप देखेंगे कि जो आप अभी देख रहे हैं, वह देखना भी अवश्य ही छूट जाता है। जब आपका मन इस (जाग्रत) दशा में नहीं होता, जब आपकी बुद्धि इस दशा में नहीं होती, तो जो कुछ भी आप जानते हैं, देखते हैं, इस समय वह भी निश्चित रूप से छूट जाता है। ऐसा आपके ख्याल में आ जाएगा। जिसको आपने स्वप्न और जाग्रत दोनों से मुक्त होकर पाया था; उसी को आप जाग्रत में, एकाग्र होकर भी पा सकते हैं।

निन्यानवे प्रतिशत साधकों को पहले यही करना होता है कि वे कल्पना से मुक्त होकर जाग्रत दशा में, अपनी देह में, चक्र में, श्वास में, नाम में जागें और सभी कल्पनाओं से मुक्त हो जायें। आपको शरीर के अतिरिक्त और कुछ न भासे। अपने मन्त्र के सिवा कुछ न लगे। श्वास के सिवा कुछ न हो। ऐसा लगे, जैसे बाहर की आँख आपने बन्द की है, तो की है; भीतर में देख रहा हूँ, तो देख रहा हूँ। जो कुछ भी दिखे, दिखे; न दिखे न दिखे। शून्य दिखे, प्रकाश दिखे, श्यामाकाश दिखे। कुछ भी हो, आपको अभी से मतलब है। जो अभी है, उसी से मतलब है। उससे मतलब नहीं, जो अभी हुआ नहीं; उससे मतलब नहीं, जो कभी हुआ था या कभी होगा। जो अभी है, उसी पर मैं जाग रहा हूँ। यह विधि ही सर्वोत्तम है और सभी साधकों को मन्त्रमुग्ध करती है।

जब आप केवल बैठे हैं, केवल श्वास लेते हैं, केवल जागते हैं, तो इस तरह आप वर्तमान में जाग्रत हो जाते हैं। जो आपका मन

भटकता था और देखता था, उसके तमाम स्वप्न टूट जाते हैं। यह सत्य की एक वह दशा है, जिसे आप कम से कम यह कह सकते हैं कि आप अपनी कल्पनाओं से, स्वप्नों से छूटे और जो आपकी दृष्टि में सत्य है, कम से कम उसके प्रति तो जाग सके हैं। जैसे प्रकृति के नियम से ही स्वप्न होते हैं और टूट जाते हैं; जाग्रत दिखाई देता है और नियम से ही न दिखाई देने की स्थिति आ जाती है; ऐसे ही प्रयत्नपूर्वक जब आप जाग्रत में टिक जाते हैं और स्वप्नों से मुक्त हो जाते हैं; तो थोड़ी देर के बाद जागते-जागते आपकी चेतना में से शरीर और जो कुछ भी आप देख रहे थे, वह भी तिरोहित होना शुरू हो जाता है। अन्त में, वही बच जाता है, जो पहली प्रक्रिया से हमने बताया था। वह "मैं" और उस सम्बन्ध में आपको जानना चाहिए।

इसलिए, जो अभी नहीं सोच सकते उनके लिए और अधिक लोगों के लिए भी, सबसे सुगम उपाय है कि आप शरीर में सावधान होकर बैठें, भीतर जागें और सुमिरें, जपें, ध्यान दें और इस शरीर को न भूलें। पूरी शक्ति के साथ, शरीर के साथ जाग्रत बने रहें; जिससे एक स्वप्न का तल टूट जाये और तब कुछ देर के बाद अपने आप आपकी बुद्धि और मन शान्त होने लग जाएँगे और धीरे-धीरे अपने आप आप सत्य में पहुँच जाएँगे, जिसको समाधि कहते हैं।

जाग्रत को जब तक आप नहीं भूलते, तब तक आप स्वप्नों में प्रवेश नहीं कर सकते और कल्पनाओं में भी प्रवेश नहीं कर सकते। ये जाग्रत को न भूलना, ध्यान में बहुत आवश्यक है। अब ध्यान में आप देह, मन या और जो भी आप आवश्यक समझें, सीधा-सीधा इस समय उस पर जाग्रत हों और ध्यान का प्रयोग करें।

आप अपने मन को आज्ञा-चक्र पर टिकायें और लगातार देखते रहें। कुछ दिखे या न दिखे, उसकी परवाह न करें। बीस मिनट तक इस प्रयोग को बिना कल्पना किए करें। कुछ दिन में प्रकाश, नीलाकाश, अन्य देवी-देवता, मन्त्र आदि का साक्षात्कार होने लगता है। किन्तु, कुछ दिखे ही, ऐसा संकल्प कदापि नहीं करना चाहिए। □



मुद्रक : **दुर्गा मुद्रणालय**, सुभाष पार्क एक्स्टेंशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

महाराज श्री के अन्य प्रवचन-संग्रह

दो दिशाओं की यात्रा एक साथ (अप्राप्त)	४.००
धर्म-क्रान्ति (अप्राप्त)	२.५०
सुखी मीन जहँ नीर अगाधा	७.००
अन्तर्तृप्ति (अप्राप्त)	५.००
प्यासा सागर (अप्राप्त)	५.००
साधना-विधि	१.५०
ध्यान-मुक्ति का साधन (अप्राप्त)	१.२५
इनर पीस (अंग्रेजी में)	१०.००
मैं और परमात्मा	५.००
आत्म-साक्षात्कार	५.००
नंगा परमात्मा	६.००

✧ पुस्तक प्राप्ति स्थान ✧

अखण्ड परमधाम

रानी की गली, सप्त सरोवर, हरिद्वार (उ० प्र०)

महेशचन्द्र टण्डन, २५५४/१, बिहारी कॉलोनी, शाहदरा, दिल्ली-३२

विशेष जानकारी एवं पत्र-व्यवहार के लिए—

अखण्ड परमधाम, रानी की गली, सप्त सरोवर, हरिद्वार, (उ० प्र०)

दूरभाष : १३०५